6

सुमर सदा मन आतमराम...

सुमर सदा मन आतमराम, सुमर सदा मन आतमराम ।। टेक ।।
स्वजन कुटुंबी जन तू पोषै, तिनको होय सदैव गुलाम ।
सो तो हैं स्वारथ के साथी, अंतकाल नहिं आवत काम ।।1 ।।
जिमि मरीचिका में मृग भटकै, परत सो जब ग्रीषम अति घाम ।
तैसे तू भवमाहीं भटकै, धरत न इक छिनहू विसराम ।। 2 ।।
करत न ग्लानि अबै भोगन में, धरत न वीतराग परिनाम ।
फिर किमि नरकमाहिं दुःख सहसी, जहाँ सुख लेश न आठौ जाम ।। 3 ।।
तातैं आकुलता अब तजिकै, थिर है बैठो अपने धाम ।
'भागचन्द' वसि ज्ञान नगर में, तजि रागादिक ठग सब ग्राम ।। 4 ।।

हे मन! सदा आत्मा का स्मरण किया कर ।।टेक।।

तू सदा परिवार और कुटुम्ब के लोगों का ही हित सोचता है और सदा उनकी ही आधीनता में रहता है परंतु वास्तव में तो वे सभी लोग स्वार्थ वश ही साथ रहते हैं। ध्यान रहे! जीवन के अंत में कोई भी तेरा सहयोग करने वाला नही है।।१।।

जिस प्रकार भीषण धूप पड़ने पर धूल के कण चमकते हैं परन्तु हिरण को उसमें पानी का भ्रम हो जाता है और वह पानी पीने के लिये दौड़ लगाता रहता है और परेशान होता है क्योकि वास्तव में तो पानी नही है। इसी प्रकार अज्ञानी जीव भी संसार में सुख समझकर भटकता रहता है और एक क्षण भी शांति से नहीं बैठ पाता है ।।२।।

यह जीव अज्ञान के कारण भोगों से विरक्त नहीं होता और वीतराग परिणाम धारण नहीं करता। पश्चात मरकर नरक गति में जन्म धारण कर अनेक दु:ख सहन करता है। नरक में आठों पहर अर्थात दिन–रात दु:ख ही भोगता है, वहाँ एक पल का भी सुख प्राप्त नहीं होता ।।३।।

कविवर भागचंदजी कहते हैं कि अब आकुलता का त्यागकर अपने आत्मस्वरूप में स्थिर हो जाओ और समस्त राग आदि दु:ख देने वाले स्थानों को छोड़कर अपने ज्ञान स्वरूप में निवास करो ।।४।।